UP Board Solutions for Class 10 Sanskrit Chapter 6 गीतामृतम् (पद्य – पीयूषम्)

परिचय

समस्त उपनिषदों की सारभूत 'श्रीमद्भगवद्गीता' भारतीय दर्शन की अमूल्य निधि है। यह महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित अनुपम ग्रन्थ; 'महाभारत' जिसे पंचम वेद भी माना जाता है; के अन्तर्गत सात-सौ श्लोकों का संकलन है। श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया; निष्काम कर्म करने का; उपदेश ही इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' का एक भी वाक्य सदुपदेश से रहित नहीं है। यह भारत के समस्त आध्यात्मिक ग्रन्थों की चरम परिणति है। प्रस्तुत श्लोक श्रीमद्भगवद्गीता से ही संगृहीत हैं।

पाठ-सारांश

श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि तुम्हारा अधिकार कर्म करने में है, फल की प्राप्ति में नहीं: अतः तुम निरन्तर कर्म करते रहो। हे अर्जुन! सफलता और असफलता को एक समान मानकर कर्म करो; ऐसा करने की बुद्धि रखने वाला व्यक्ति ही योगी कहलाता है। कर्म न करने से कर्म करना श्रेष्ठ है; क्योंकि बिना कर्म किये तो जीवन ही सम्भव नहीं है। इसलिए अपने निर्धारित कर्मों को करो। हे भरतवंशी अर्जुन! लोक-कल्याण को चाहने वाले विद्वान् तो राग-द्वेष से रहित होकर कर्म करते हैं। जो ऐसा नहीं करते, वे मूर्ख हैं। प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं से सन्तुष्ट, ईर्ष्या से रहित, सफलता-असफलता को एक समान मानकर कार्य करने वाला और सुख-दु:ख में तटस्थ व्यक्ति सांसारिक बन्धनों में नहीं बँधता है। श्रद्धावान्, प्रयत्नशील और इन्द्रियों को संयमित रखने वाला मनुष्य ही ज्ञान को प्राप्त कर परम शान्ति को प्राप्त करता है। इसके विपरीत ज्ञानहीन, श्रद्धाहीन और संशय से युक्त मन वाला व्यक्ति न तो इहलोक में और न ही परलोक में सुख-शान्ति प्राप्त करता है।

पाण्डुपुत्र अर्जुन! जो व्यक्ति मुझे बड़ा मानकर, कुसंगति एवं विद्वेषरहित होकर कर्म करता है, वह मुझे प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति प्रसन्नता, द्वेष, शोक, शुभ-अशुभ में तटस्थ रहकर त्याग एवं भक्ति का जीवन बिताता है, जो शत्रु-मित्र, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी एवं सुख-दु:ख को एकसमान मानता है और आसक्ति से रहित है; जो निन्दा-प्रशंसा में समान भाव रखता है, प्राप्त वस्तु से सन्तुष्ट रहता है, गृह-त्यागी, स्थिर बुद्धि और भक्ति में लीन रहता है, वह मनुष्य मुझे प्रिय है।

पद्यांशों की ससन्दर्भ हिन्दी व्याख्या

(1)
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ [2008]

शब्दार्थ कर्मणि एव = कर्म करने में ही। अधिकारः = अधिकार है। ते = तुम्हारा। मा = नहीं है। फलेषु =(कर्म, के) फलों पर। कदाचन = कभी। कर्मफलहेतुः = कर्मफल के निमित्त। मा भूः = मत बनो। सङ्गः = आसक्ति। अस्तु = हो। अकर्मणि = कर्म न करने में।

सन्दर्भ प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत' के पद्य-खण्ड 'पद्य-पीयूषम्' के 'गीतामृतम्' पाठ से उद्धृत है।

[संकेत इस पाठ के शेष सभी श्लोकों के लिए यही सन्दर्भ प्रयुक्त होगा।**]**

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं कि तुम्हारी अधिकार केवल कर्म करने में ही है।

अन्वय ते अधिकारः कर्मणि एव (अस्ति), फलेषु कदाचन मा (अस्ति)। कर्मफलहेतुः मा भूः। अकर्मणि ते सङ्गः मा अस्तु।

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम्हारा अधिकार मात्र कर्म करने में ही है, उसके फल की प्राप्ति में कभी नहीं है। इसलिए तुम कर्मफल के हेतु मत बनो तथा कर्म न करने में अर्थात् कर्महीन होकर बैठे रहने में तुम्हारी आसक्ति न हो। तात्पर्य यह है कि कर्म पर तुम्हारा अधिकार है, इसलिए तुम्हारा कर्महीन हो जाना एक अनुचित प्रवृत्ति है। अतः तुम्हें कर्महीनता की ओर उन्मुख नहीं होना चाहिए।

(2)
योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ [2006]

शब्दार्थ योगस्थः = योग में स्थित रहते हुए। कुरु कर्माणि = कर्मों को करो। सङ्गम् = फल के प्रति आसक्ति को। त्यक्त्वा = त्यागकर। धनञ्जय = अर्जुन का एक नाम। सिद्ध्यसिद्ध्योः = सफलता और असफलता को। समः भूत्वा = समान रहकर। समत्वं = सदा समान स्थिति में रहना ही। योगः = योग। उच्यते = कहा जाता है।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में अर्जुन को योग-भाव से कर्म करने का उपदेश दिया गया है।

अन्वय धनञ्जय! सङ्गं त्यक्त्वा सिद्ध्यसिद्ध्योः समः भूत्वा योगस्थः कर्माणि कुरु। समत्वं योग उच्यते।

व्याख्या श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! फल के प्रति आसक्ति को छोड़कर सफलता और असफलता को समान समझकर योग में स्थित होकर कर्म करो। सफलता और असफलता को समान समझकर कार्य करना ही योग कहलाता है।

(3)
नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ [2008, 14]

शब्दार्थ नियतम् = निर्धारित कुरु = करो। त्वं = तुम। ज्यायः = श्रेष्ठ है। हि = क्योंकि अकर्मणः = कर्म न करने से। शरीरयात्रापि = शरीर-निर्वाह भी। प्रसिद्ध्येत् = पूर्ण नहीं हो सकता है।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में कर्म को जीवन के लिए आवश्यक बताया गया है।

अन्वय त्वं नियतं कर्म कुरु हि अकर्मणः कर्म ज्याय: (अस्ति)। अकर्मण: ते शरीरयात्रा अपि न प्रसिद्ध्येत्।

https://www.evidyarthi.in/

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तुम निर्धारित कर्म करो अर्थात् अपने कर्तव्यों का पालन करो; क्योंकि कर्म न करने से कर्म करना अधिक श्रेष्ठ है। कर्म न करने वाले, तुम्हारा जीवन-निर्वाह भी सिद्ध नहीं हो सकता है। तात्पर्य यह है कि कर्म के बिना तो जीवन (जीवित रहना) ही असम्भव है।

(4)
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम् ॥

शब्दार्थ सक्ताः = आसक्त रहने वाले कर्मणि = क़र्म में। अविद्वांसः = अज्ञानी लोग। यथा = जैसे। कुर्वन्ति = करते हैं। भारत = भरत-वंश में उत्पन्न होने वाले अर्जुन कुर्यात् = करना चाहिए। विद्वान् = विवेकी। तथा = उसी प्रकार। असक्तः = अनासक्त रहकर चिकीर्षुः = करने की इच्छा रखने वाला। लोकसङ्ग्रहम् = लोक-कल्याण।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में बताया गया है कि विद्वान् को कर्म का त्याग न करके उसकी आसक्ति का त्याग करना चाहिए। अन्वय भारत! कर्मणि सक्ताः अविद्वांसः यथा कुर्वन्ति, लोकसङ्ग्रहं चिकीर्षुः विद्वान् असक्तः (सन्) तथा कुर्यात्।।

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे भरतवंशी अर्जुन! कर्म करने में आसक्त अर्थात् राग-द्वेष से लिप्त हुए अज्ञानीजन जैसा कार्य करते हैं, लोक-कल्याण करने की इच्छा रखने वाला विद्वान् अनासक्त रहकर अर्थात् राग-द्वेष में लिप्त न होकर वैसा कार्य करता है। तात्पर्य यह है कि कर्म को विवेकी और अविवेकी दोनों ही करते हैं किन्तु अविवेकी कर्म में आसक्ति के कारण कर्म करता है और विवेकी लोकशिक्षा की दृष्टि से।।

(5)
यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥

शब्दार्थ यदृच्छालाभसन्तुष्टः = स्वभावतः प्राप्त होने वाली वस्तुओं से सन्तुष्ट रहने वाला। द्वन्द्वातीतः = सुख और दुःख के द्वन्द्वों से रहित। विमत्सरः = ईर्ष्या (मत्सर) से रहित। समः = समान रहने वाला। सिद्धौ असिद्धौ च= सफलता (सिद्धि) और असफलता (असिद्धि) में। कृत्वा अपि = कर्म करके भी। ननिबध्यते =(कर्मबन्धन में) नहीं बँधता है।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में बताया गया है कि कर्मफल भोगने के लिए कौन बाध्य नहीं होता।

अन्वय यदृच्छालाभसन्तुष्टः, द्वन्द्वातीतः, विमत्सरः, सिद्धौ असिद्धौ च समः (पुमान्) (कर्म) कृत्वा अपि न निबध्यते।

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जो मनुष्य उसी लाभ से सन्तुष्ट होता है, जो उसे मिलता रहता है, जो सुख में प्रसन्न और दुःख में दुःखी नहीं होता है, ईर्ष्या से रहित, सफलता और असफलता में एक-सा रहने वाला पुरुष कर्म करके भी कर्मबन्धन में नहीं बँधता है।

(6)
श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ [2009, 11, 12, 13]

शब्दार्थ श्रद्धावान् = श्रद्धावाला, श्रद्धालु। लभते ज्ञानं = ज्ञान को प्राप्त करता है। तत्परः = उसमें लगा हुआ, तल्लीन। संयतेन्द्रियः = इन्द्रियों को वश में रखने वाला, जितेन्द्रिय। ज्ञानं = ज्ञान को। लब्ध्वा = प्राप्त करके। परां शान्ति = अत्यधिक शान्ति को। अचिरेण = शीघ्र ही। अधिगच्छति = प्राप्त हो जाता है।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन को शीघ्र शान्ति प्राप्त करने का उपाय बता रहे हैं।

अन्वय श्रद्धावान्, तत्परः, संयतेन्द्रियः ज्ञानं लभते। ज्ञानं लब्ध्वा अचिरेण परां शान्तिम् अधिगच्छति।

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जो मनुष्य श्रद्धालु हो, सदैव ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक हो, अपनी इन्द्रियों को वश में करने वाला अर्थात् जितेन्द्रिय हो, वही पुरुष ज्ञान प्राप्त करता है और ज्ञान प्राप्त करके शीघ्र ही परम शान्ति अर्थात् लोकोत्तर शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

(7)
अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति
नायं लोकोऽस्ति नपरोन सुखं संशयात्मनः॥ [2010, 11, 12]

शब्दार्थ अज्ञः = ज्ञानहीना च = और अश्रद्दधानः = श्रद्धा न रखने वाला; अश्रद्धालु। संशयात्मा = संशय से युक्त मन वाला। विनश्यति = नष्ट हो जाता है। न अयं लोकः अस्ति =न यह संसार है। न परः =न परलोक है। न सुखं = न सुख है। संशयात्मनः = संशययुक्त मन वाले का।

प्रसंग प्रस्तुत लोक में संशय में पड़े हुए मनुष्य की दुर्गति के विषय में बताया गया है।

अन्वय अज्ञः च अश्रद्दधानः संशयात्मा च विनश्यति। संशयात्मन: अयं लोकः न अस्ति, परः (लोकः) न अस्ति, सुखं न (अस्ति)।

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि ज्ञानहीन, श्रद्धा न रखने वाला और संशय से युक्त मनवाला पुरुष नष्ट हो जाता है। संशय में पड़े हुए मनुष्य का न यह लोक है, न परलोक है और न ही सुख है।

(8)
मत्कर्म कृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव! ॥

शब्दार्थ मत्कर्म कृत् = मेरे लिये कर्म करने वाला। मत्परमः = मुझे ही सबसे बड़ा मानने वाला। मद्भक्तः = मेरा भक्त। सङ्गवर्जितः = आसक्तिरहित, दुर्जनों के साथ से रहित। निर्वैरः = शत्रुता से रहित; अर्थात् वैर न करने वाला। सर्वभूतेषु = सभी जीवों में। यः = जो। सः = वह। माम् = मुझको। एति = प्राप्त करता है।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को मोक्ष-प्राप्ति का उपाय बताया गया है।

अन्वये पाण्डव! यः मत्कर्म कृत्, मत्परमः, मद्भक्त: सङ्गवर्जितः, सर्वभूतेषु (च) निर्वैरः (अस्ति), सः माम् एति।।

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे पाण्डुपुत्र अर्जुन! जो मेरे लिए कर्म करने वाला, मुझे ही सबसे बड़ा मानने वाला, मेरा भक्त (किसी भी व्यक्ति या वस्तु की) आसक्ति से रहित और सब जीवों पर शत्रुता-भाव से रहित है, वह पुरुष मुझे प्राप्त कर लेता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यह श्लोक श्रीकृष्ण के

https://www.evidyarthi.in/

परमब्रह्म स्वरूप को दर्शाता है।

(9)
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ [2009, 12, 13, 14]

शब्दार्थ यः न हृष्यति = जो न प्रसन्न होता है। द्वेष्टि = द्वेष करता है। शोचति = शोक करता है। काङ्क्षति = इच्छा करता है। शुभाशुभपरित्यागी = शुभ और अशुभ का परित्याग करने वाला। भक्तिमान् = भक्त) मे प्रियः = मेरा प्रिय है।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में बताया गया है कि भगवान् को कौन प्रिय ?

अन्वय यः न हृष्यति, ने द्वेष्टि, न शोचति, न काङ्क्षति, शुभाशुभ परित्यागी, यः
भक्तिमान् (चे अस्ति) स मे प्रियः (अस्ति)।

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जो पुरुष न प्रसन्न होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न इच्छा करता है, शुभ और अशुभ पदार्थों का त्याग करने वाला और जो भक्तियुक्त है, वह मुझे प्रिय है।।

(10)
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ [2014]

शब्दार्थ समः = समान। शत्रौ = शत्रु में। मित्रे = मित्र से। मानापमानयोः = मान और अपमान में।। शीतोष्णसुखदुःखेषु = सर्दी, गर्मी, सुख और दुःख में भी। सङ्गविवर्जितः = आसक्ति से रहित।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में बताया गया है कि भगवान् को कौन प्रिय है?

अन्वय (यः जनः) शत्रौ मित्रे च समः (अस्ति), तथा मानापमानयोः (समः अस्ति), शीतोष्ण सुखदुःखेषु समः (अस्ति), सङ्गविवर्जितः (च अस्ति), (स में प्रियः अस्ति)।

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! जो मनुष्य शत्रु और मित्र में एक समान, सम्मान तथा अपमान में एक समान, सर्दी-गर्मी में एक समान और सुख-दुःख में एक समान आचरण करने वाला और आसक्ति से रहित होता है, वह मुझे प्रिय है। तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य शत्रु से घृणा और मित्र से प्रेम नहीं करता, सम्मान से जिसे प्रसन्नता नहीं होती, अपमान से मानसिक कष्ट नहीं होता, गर्मी-सर्दी और सुख-दु:ख में जो समान है तथा इन्द्रियादि विषयों की आसक्ति से रहित है, वह मुझे प्रिय है।

(11)
तुल्यनिन्दास्तुतिमनी सन्तुष्टो येन केनचित्
अनिकेत: स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ [2008, 10, 12]

शब्दार्थ तुल्यनिन्दास्तुतिः = जो निन्दा और प्रशंसा में समान है। मौनी = मौन रहने वाला अर्थात् मननशील। सन्तुष्टः = सुप्रसन्ना येन केनचित् = जिस-किसी वस्तु से, अर्थात् जो कुछ मिले उसी से। अनिकेतः = गृहरहित। स्थिरमतिः = स्थिर बुद्धि वाला। भक्तिमान् = भक्ति से युक्त। मे = मुझे। प्रियः = प्रिय है। नरः = मनुष्य।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में बताया गया है कि भगवान् को कौन प्रिय है?

अन्वय (यः नरः) तुल्यनिन्दास्तुतिः, मौनी, येन केनचित् (वस्तुना) सन्तुष्टः, अनिकेतः, स्थिरमतिः, भक्तिमान् (च अस्ति), (सः) नरः मे प्रियः (अस्ति)।

व्याख्या जो मनुष्य निन्दा और स्तुति में समान रहता है, मौन रहता है, जो कुछ मिल जाये उसी में सन्तुष्ट रहता है, गृहविहीन, स्थिर बुद्धि वाला और भक्ति से युक्त मुझे प्रिय है। तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य अपनी निन्दा सुनकर दुःखी नहीं होता, प्रशंसा सुनकर आनन्दित नहीं होता, वाणी पर जिसका संयम है, जो कुछ भी उसे प्राप्त हो जाता है, उसी में वह सन्तुष्ट हो जाता है, अपने घर का त्याग कर देता है, स्थिर बुद्धि वाला और भक्तियुक्त है, वह मनुष्य मुझे प्रिय है।

सूक्तिपरक वाक्यांशों की व्याख्या

(1) कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। [2007, 13, 14]

सन्दर्भ प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत' के पद्य-खण्ड 'पद्य-पीयूषम्' के 'गीतामृतम्' नामक पाठ से अवतरित है।

[संकेत इस पाठ की शेष सभी सूक्तियों के लिए यही सन्दर्भ प्रयुक्त होगा।**]**

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को कर्म करने के लिए प्रेरित किया गया है।

अर्थ तुम्हारा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फल की प्राप्ति में नहीं।

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि तुम्हारे अधिकार में केवल कर्म करना है, उसके फल के विषय में सोचना नहीं। कर्म के फल पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। इसलिए तुम्हें अकर्मण्य भी नहीं होना चाहिए, क्योंकि बिना कर्म किये तो व्यक्ति वित भी नहीं रह सकता। इसलिए जो (कर्म-फल) तुम्हारे वश में नहीं है, उस पर विचार करना छोड़ दो और कर्म करने में लग जाओ।

(2) ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। [2009]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में कृष्ण अर्जुन को उपदेश दे रहे हैं कि कर्महीनता में तुम्हारी आसक्ति नहीं होनी चाहिए।

अर्थ तुम्हारी अकर्म में आसक्ति न हो।

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि व्यक्ति को कभी भी आलस्य के वशीभूत होकर, कर्महीन होकर नहीं रहना चाहिए, क्योंकि कर्महीनता की स्थिति में व्यक्ति को जीवित रहना ही सम्भव नहीं। व्यक्ति को कभी इस बात से निराश होकर भी कर्महीन नहीं होना चाहिए कि वह जो कर्म करता है, उसको फल उसे नहीं मिलता। व्यक्ति का अधिकार तो केवल कर्म करने का ही है, अतः उसे अपने कर्तव्य का निर्वाह निरन्तर करते रहना चाहिए। व्यक्ति को उसके कर्मों का फल कब और कितना मिलना है, यह सोचने का विषय तो केवल परमेश्वर का ही है।

(3) योगस्थः कुरु कर्माणि। [2008, 10, 15]

https://www.evidyarthi.in/

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में कर्म के तरीके पर प्रकाश डाला गया है।

अर्थ योग में स्थित होकर कर्म करो।

व्याख्या, सफलता तथा असफलता में समान भाव रखना ही योग कहलाता है। कार्य करते समय मनुष्य को कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि वह सफल होगा अथवा असफल। सफलता मिलने पर प्रसन्न न होना और असफलता में दुःखी न होना ही समान भाव अर्थात् योग है। अत: व्यक्ति को सदैव योग अर्थात् समान भाव में स्थित होकर ही कोई भी कर्म करना चाहिए।

(4)
समत्वं योग उच्यते।। [2006, 07, 08,09, 10, 12, 14, 15]
सिध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में समत्व-योग को स्पष्ट किया गया है।

अर्थ सिद्धि और असिद्धि में समान रहने वाले समत्व को योग कहा जाता है।

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि मनुष्य को कर्म करते समय यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि मुझे इस कार्य में सफलता मिलेगी या असफलता। सफलता मिलने पर प्रसन्न न होना और असफलता मिलने पर दु:खी न होना अर्थात् सफलता और असफलता में समान भाव रखनी ही योग कहलाता है। तात्पर्य यह है। कि मनुष्य को आसक्तिरहित होकर अर्थात् सुख और दुःख में समभाव रखते हुए कर्म करना चाहिए।

(5) ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति। [2009, 10, 11, 12]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में भगवान् कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं कि ज्ञान से चिरशान्ति प्राप्त होती है।

अर्थ व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करके शीघ्र ही परमशान्ति को प्राप्त करता है।

व्याख्या इस संसार में अज्ञान ही दु:खों का कारण है और जब तक व्यक्ति दु:खों का अनुभव करता रहेगा, उसे शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। व्यक्ति को जैसे ही ज्ञान प्राप्त होता और वह यह जान लेता है कि संसार के सभी सुखोपभोग मिथ्या हैं, उनसे वास्तविक सुख-शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती, तब वह परम शान्ति की प्राप्ति के लिए ईश्वर-भक्ति में अपना समय लगाता है। संसार के सुखोपभोगों से उसे विरक्ति होने लगती है। जब व्यक्ति संसार से पूर्णरूपेण विरक्त होकर अपना सर्वस्व ईश्वर को समर्पित कर देता है, तब वह परम शान्ति का अनुभव करता है। इसीलिए उचित ही कहा गया है कि ज्ञान ही परम-शान्ति को प्रदान करने वाला है।

(6) श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् तत्परः संयतेन्द्रियः। [2006, 12]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में कहा गया है कि श्रद्धालु व्यक्ति ही ज्ञानी होता है।

अर्थ, श्रद्धावान्, संलग्न और इन्द्रियों को वश में रखने वाला ही ज्ञान को प्राप्त करता है।

व्याख्या ज्ञान गुरु से प्राप्त होता है और ज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरु के प्रति श्रद्धा की भावना अवश्य होनी चाहिए। श्रद्धा का भाव उसी व्यक्ति में होता है, जो विनयशील होता है। जिस व्यक्ति के हृदय में श्रद्धा का भाव नहीं होता है, वह विनयशील नहीं हो सकता; क्योंकि उसके हृदय में अहंकार का वास होता है और अहंकारी व्यक्ति कभी भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। अत: कृष्ण का यह कथन कि श्रद्धा से ही ज्ञान प्राप्त होता है पूर्ण रूप से व्यावहारिक और स्वाभाविक है। विनयशील म य ज्ञान को प्राप्त करके परम शान्ति को प्राप्त करता है।

(7)
संशयात्मा विनश्यति।
न सुखं संशयात्मनः।। [2011, 13, 14]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में संशययुक्त व्यक्ति की दुर्गति के विषय में बताया गया है।

अर्थ संशययुक्त मन वाला विनष्ट हो जाता है। संशययुक्त व्यक्ति को कोई सुख प्राप्त नहीं होता।

व्याख्या ये दोनों ही सूक्तियाँ श्रीमद्भगवद्गीता के निम्नलिखित श्लोक की अंश हैं

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥

अर्थात् अज्ञानी, श्रद्धा से रहित और संशय से युक्त मने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है। ऐसे व्यक्ति के लिए न तो यह संसार है, न परलोक है और न तो सुख ही है। श्रीकृष्ण ने 'श्रीमद्भगवद्गीता' के इस श्लोक में नष्ट होने वाले व्यक्ति के तीन लक्षण बताये हैं—प्रथम लक्षण है-'ज्ञान का न होना', दूसरा लक्षण है-"श्रद्धा का न होना और तीसरा लक्षण है-'संशय से युक्त मन वाला होना। व्यक्ति का अज्ञानी होना उसके लिए। कितना घातक है, यह तो वर्तमान परिवेश में जीवन व्यतीत करने वाला सामान्य व्यक्ति भी जानता है। श्रद्धा का भाव सदैव अपने से बड़ों के प्रति होता है। जिस व्यक्ति में अपने से बड़ों के प्रति श्रद्धा नहीं होती, निश्चित ही उसके मन में अहंकार का भाव विद्यमान होता है और अहंकारी व्यक्ति का विनाश होना तो अवश्यम्भावी ही है। गीता में ही अन्यत्र कहा गया है कि श्रद्धावान् व्यक्ति को ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। संशययुक्त मन वाला अर्थात् द्विविधा में पड़ा हुआ व्यक्ति सदैव करणीय और अकरणीय के द्वन्द्व से ग्रस्त होने के कारण कुछ भी नहीं कर पाता। कहा भी गया है-"दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम।" निश्चित ही ज्ञानहीन के लिए इस लोक में कोई स्थान नहीं, श्रद्धाहीन व्यक्ति के लिए उसे लोक (परलोक) में कोई स्थान नहीं और संशयग्रस्त व्यक्ति को तो कभी सुख प्राप्त हो ही नहीं सकता। श्रीकृष्ण के कहने का आशय यह है कि इहलोक और परलोक में सुख-प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति को इनका-अज्ञान, अश्रद्धा, संशय-त्याग कर देना चाहिए।

(8) निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डवः। [2006]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में प्राणिमात्र से प्रेम को उचित बताया गया है।

अर्थ जो सभी प्राणियों के प्रति वैररहित होता है, वही मुझे प्राप्त करता है।

व्याख्या श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे पाण्डुपुत्र! जो व्यक्ति सभी प्राणियों से प्रेम करता है, किसी से वैरभाव नहीं रखता है, वह व्यक्ति मुझे सबसे अधिक प्रिय है। सभी प्राणियों को ईश्वर ने बनाया है, फिर उसके द्वारा बनायी वस्तु के प्रति बैर अथवा ईष्र्या-द्वेष रखना उचित नहीं है। जो प्राणी ईश्वर द्वारा बनायी गयी वस्तुओं से प्रेम नहीं कर सकता, ईश्वर को वह प्राणी कैसे प्रिय हो सकता है। यदि हम चाहते हैं कि हम पर ईश्वर की कृपा-दृष्टि बनी रहे तो हमें ईष्र्या-द्वेष आदि भावनाओं को अपने हृदय से निकालकर प्राणिमात्र से प्रेम करना चाहिए।

https://www.evidyarthi.in/

(9) शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।

प्रसंग प्रस्तुत पंक्ति में भक्ति और समभाव के महत्त्व को बताया गया है।

अर्थ शुभ और अशुभ का परित्याग करने वाला भक्तिमान् व्यक्ति मुझे प्रिय है।

व्याख्या श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति–जो शुभ और अशुभ अर्थात् पवित्र और अपवित्र का विचार किये बिना समस्त भोग्य वस्तुओं का समान भाव से परित्याग करता है; अर्थात् उसे शुभ वस्तुओं के प्रति जरा-भी लगाव और अशुभ के प्रति जरा-भी दुराव नहीं होता; जो मेरी भक्ति; अर्थात् परमात्मा की भक्ति; में मन लगाता है, वही मुझे; अर्थात् परमात्मा को; प्रिय होता है।

श्लोक का संस्कृत-अर्थ

(1) कर्मण्येवाधिकारस्ते ..... सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ (श्लोक 1) (2008, 15]
संस्कृतार्थः गीतायां भगवान् कृष्णः अर्जुनं कर्म कर्तुम् उपदिशति यत् भोः अर्जुन! कर्मकरणे एवं तव अधिकारः अस्ति, कर्मणः फले तव अधिकारः न अस्ति। अतः त्वं कर्मणः फलस्य कारणं मी भव। कर्मणां फलस्येच्छां त्यक्त्वा कर्म कर्त्तव्यम्। कर्म न करणे तव आसक्तिः अपि न स्यात्। अत: त्वं कर्म एव कुरु, तस्य फलस्य इच्छां मा करु।

(2) योगस्थः कुरु ..... योग उच्यते ॥ (श्लोक 2) 2011, 12]
संस्कृतार्थः गीतायां भगवान् कृष्णः अर्जुनम् उपदिशति यत् हे अर्जुन! सफलता-असफलतयोः समं भूत्वा, रागं त्यक्त्वा, योगस्थः भूत्वा च कर्माणि कुरु। यः पुरुषः सिद्ध्यसिद्ध्योः समं मत्वा कार्यं कुरुते तस्य समत्वं योगः उच्यते।

(3) श्रद्धावान् लभते ..... अचिरेणाधिगच्छति ॥ (श्लोक 6) [2007,09, 12]
संस्कृतार्थः गीतायां भगवान् कृष्णः अर्जुनम् उपदिशति यत् यः व्यक्ति श्रद्धावान् भवति, ज्ञानम् आप्तुं सदैव तत्परः भवति, इन्द्रियाणि संयमते, सः व्यक्तिः सद्ज्ञानं प्राप्य शीघ्रम् एव परां शान्ति प्राप्य सुखी भवति।।

(4) यो न हृष्यति ..... स मे प्रियः ॥ (श्लोक 9) [2007,08, 11, 14]
संस्कृतार्थः गीतायां भगवान् श्रीकृष्णः अर्जुनम् उपदिशति यत् यः पुरुषः सुखे न प्रसन्नं भवति, कस्मै न ईष्र्ष्यति, दु:खे न शोकं करोति, कस्मै न स्पृह्यति, शुभम् अशुभम् च परित्यजति, यः मां भजति, सः पुरुषः मे प्रियः अस्ति।

(5) समः शत्रौ च ..... समः सङ्गविवर्जितः ॥ (श्लोक 10) [2009]
संस्कृतार्थः श्रीकृष्णः अर्जुनं कथयति–यः नर: रिपो सुहृदि च समानं व्यवहरति, आदरे अनादरे च तुल्यरूपः भवति, शीतम् उष्णं सुखं दुःखं च समानं मन्यते, एवेषु किमपि भेदं न करोति, आसक्तिहीनः च भवति, सः नरः मम (भगवत:) प्रियः भवति।

(6) तुल्यनिन्दास्तुतिः ..... प्रियो नरः ॥ (श्लोक 11)
संस्कृतार्थः गीतायां भगवान् श्रीकृष्ण: अर्जुनम् उपदिशति यत् यः पुरुषः निन्दायां स्तुतौ च समः भवति, मौनी तथा सर्वासु अवस्थासु सन्तुष्टः, गृहे ममत्वरहितः, स्थिरमतिः अस्ति, स एव भक्तिमान् पुरुष: मे प्रियः भवति।